

भक्तवर अङ्गद

भूल भला कैसे सकें ये जगजन भूले हुए।

नीलकान्त प्रभु बाहुके अङ्गद स्वर्णाङ्गद हुए॥

वनवासके समय भगवती जानकीका अन्वेषण करते हुए मर्यादापुरुषोत्तम ऋष्यमूकपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुग्रीवसे मित्रता की। सुग्रीवका पक्ष लेकर उन्होंने वानरराज बालिको मारा। मरते समय बालिने अपने पुत्र अङ्गदको उन सर्वेश्वरके चरणोंमें अर्पित किया। बालिने कहा—

यह तनय मम सम बिनय बल कल्याणप्रद प्रभु लीजिए।

गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए॥

प्रभुने अङ्गदको स्वीकार किया। सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य मिला, किंतु युवराजपद बालिकुमार अङ्गदजीका ही रहा। अङ्गदने भगवान्की इस कृपाको हृदयसे ग्रहण किया। श्रीसीताजीको ढूँढ़ते हुए जब वानर वीरोंका दल दक्षिण समुद्रतटपर निराश होकर बैठ गया, तब अङ्गदजीने अपने भाव स्पष्ट व्यक्त किये—

पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥

सौ योजन समुद्र पार करके लंकामें जाना और वहाँसे सकुशल लौट आना संदेहकी बात थी, फिर भी युवराज रामकाजके लिये लंका जानेको उद्यत हो गये थे। जाम्बवन्तजीने ही उन्हें नहीं जाने दिया। हनुमान्जी लंका गये और वहाँके समाचार ले आये। भगवान्की कृपासे समुद्रपर सेतु बाँधा गया। असंख्य वानरी सेना लंकाके त्रिकूटपर्वतपर उतर गयी। अब प्रभुने अङ्गदको दूत बनाकर रावणके पास भेजा। श्रीरामजीने अङ्गदके विषयमें वहाँ कहा है—

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥

अङ्गदजीके इस दौत्यकर्मको ठीक-ठीक समझना चाहिये। श्रीहनुमान्जी रावणसे मिल चुके थे। जिस सामनीतिका प्रयत्न उन्होंने किया, वह असफल हो चुकी थी। उसीको फिर दुहराना बुद्धिमानी नहीं थी। रावण अहंकारी है, शिक्षा सुनना ही नहीं चाहता, प्रलोभनका उसपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता—यह पता लग चुका था। अब तो हनुमान्जीके कार्यको आगे बढ़ाना था। डाँटकर, भय दिखाकर ही

बुद्धिहीन अहंकारी लोगोंको रास्तेपर लाया जा सकता है। यदि रावण न भी माने तो उसके साहसको तोड़ देना, उसके अनुचरोंको भयभीत कर देना आनेवाले युद्धके लिये बड़ा उपयोगी होगा। अङ्गदजीने यही किया। रावणकी राजसभामें उनकी तेजस्विता, उनका शौर्य अद्वितीय रहा। 'श्रीराम सर्वेश्वर हैं, उनके सेवककी प्रतिज्ञा त्रिलोकीमें कोई भंग नहीं कर सकता।' यह अविचल विश्वास अङ्गदमें था, इसीसे उन्होंने रावणकी सभामें प्रतिज्ञा की—

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥

इस प्रतिज्ञाका दूसरा कोई अर्थ करना अङ्गदके दृढ़ विश्वासको न समझना है। रावण नीतिज्ञ था। उसने अनेक प्रकारकी भेदनीतिसे काम लिया। उसने सुझाया—'बालि मेरा मित्र था। ये राम-लक्ष्मण तो बालिको—तुम्हारे पिताको मारनेवाले हैं। यह तो बड़ी हीनता है कि तुम अपने पितृघातीका पक्ष ले रहे हो।' अङ्गदने रावणको स्पष्ट फटकार दिया—

सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाकें॥

जब रावण भगवान्की निन्दा करने लगा, तब युवराज उसे सह नहीं सके। क्रोध करके उन्होंने मुट्ठी बाँधकर दोनों भुजाएँ भूमिपर बड़े जोरसे दे मारीं। भूमि हिल गयी। रावण गिरते-गिरते बचा। उसके मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़े। उनमेंसे चार मुकुट अङ्गदने उठाकर भगवान्के पास फेंक दिये। इतना शौर्य दिखाकर, इतना पराक्रम प्रकट करके जब वे प्रभुके पास आये और जब उन दयामयने पूछा—

रावन जातुधान कुल टीका। भुजबल अतुल जासु जग लीका॥

तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए॥

परंतु जिनपर प्रभुकी कृपा है, जो भगवान्के चरणोंके अनन्य भक्त हैं, उनमें कभी किसी प्रकार भी अहंकार नहीं आता। उस समय अङ्गदजीने बड़ी सरलतासे उत्तर दिया—

सुनु सर्वग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी॥

साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥

नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आए॥

जैसे अङ्गदने कुछ किया हो, इसका उन्हें बोधतक

नहीं। वे सर्वथा निरभिमान हैं। इसके पश्चात् युद्ध हुआ। रावण मारा गया। उस युद्धमें युवराज अङ्गदका पराक्रम वर्णनातीत है। लंका-विजय करके श्रीराम अयोध्या पधारे। राज्याभिषेक हुआ। अन्तमें कपिनायकोंको विदा करनेका अवसर आया। भगवान् एक-एकको वस्त्राभरण देकर विदा करने लगे। अङ्गदका हृदय धक्-धक् करने लगा। वे एक कोनेमें सबसे पीछे दुबककर बैठ गये। 'कहीं प्रभु मुझे भी जानेको न कह दें!' इस आशङ्कासे—श्रीरामके चरणोंसे पृथक् होना होगा, इस कल्पनासे ही वे व्याकुल हो गये। जब सभी वानर एवं रीछ-नायकोंको भगवान्ने अपने उपहार दे लिये, जब सब आज्ञा पाकर उठ खड़े हुए, तब अन्तमें प्रभुने अङ्गदजीकी ओर देखा। अङ्गदका शरीर काँपने लगा। नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहने लगी। वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और कहने लगे—

सुनु सर्वग्य कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोछें घाली॥
असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनितजहु भगतहितकारी॥
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥
तुम्हहिं बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभुतजि भवनकाजममकाहा॥

बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ। पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ॥

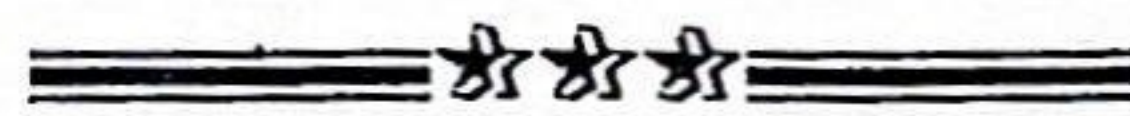
'नाथ! मेरे पिताने मरते समय मुझे आपके चरणोंमें डाला है, अब आप मेरा त्याग न करें। मुझे जिस किसी भी प्रकार अपने चरणोंमें ही पड़ा रहने दें।' यह कहकर अङ्गद श्रीरघुनाथजीके चरणोंपर गिर पड़े। करुणासागर प्रभुने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया। अपने निजी वस्त्र, अपने आभरण और अपने कण्ठकी माला श्रीराघवने अङ्गदको पहनायी और स्वयं अङ्गदको पहुँचाने चले। अङ्गद बार-बार प्रभुको दण्डवत्-प्रणाम करते हैं। बार-बार उस कमलमुखकी ओर देखते हैं। बार-बार सोचते हैं—'अब तो मुझे प्रभु कह दें कि 'अच्छा, तुम यहीं रहो।'

दूरतक दयाधामने अङ्गदको पहुँचाया। जब हनुमान्जी सुग्रीवसे अनुमति लेकर श्रीरामके पास लौटने लगे, तब अङ्गदजीने उनसे कहा—

कहेउ दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।

बार बार रघुनाथकहि सुरति कराएहु मोरि॥

महाभाग! आपकी 'सुरति' क्या रघुनाथको करानेकी आवश्यकता है? वे दयाधाम क्या अपने ऐसे प्रेमियोंको कभी भूल सकते हैं?



राम-भक्त मारीच

(डॉ० श्रीराजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी, एम० ए०)

भगवान् रामके चरित्रके साथ मारीचका बहुत निकट सम्बन्ध है। न सीताजी उसकी स्वर्ण-देहपर मोहित होतीं, न राम उसका वध करनेके लिये जाते और न रावणका संहार ही होता। बहुत दिन पहले, महर्षि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करते समय रामके बाणका स्पर्श उसको प्राप्त हुआ था। परंतु उस समय उसके प्राणोंकी रक्षा हो गयी। रघुपतिका अमोघ बाण लग जानेपर भी वह जीवित बना रहा, केवल राम-कथाको आगे बढ़ाये रखनेके लिये—रामको रावणके पासतक ले जानेके लिये, रामकार्यके लिये।

रामका चरित्र लोक-मानसका आदर्श चरित्र है। उसमें हमारे जीवनकी सहज दुर्बलताओंके सजीव चित्रणद्वारा

हमारी वृत्तियोंको ऊर्ध्वगामी बनानेकी प्रेरणा है। रामका यह समझ लेना कि सुवर्णका हरिण हो सकता है, हमारे जीवनके उस पक्षकी ओर संकेत करता है, जबकि कुसमय उपस्थित होनेपर हमारी विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है, अनेक सहज भ्रान्तियोंको हम सत्यरूपमें स्वीकार कर बैठते हैं। स्वर्ण-हरिणके पीछे दौड़नेके पहले क्या रामको कभी भी यह विश्वास हुआ होगा कि सुवर्णका भी हरिण हो सकता है। परंतु बलिहारी है उस कुसमयकी, जिसने बुद्धिमें ऐसा फेर उत्पन्न कर दिया कि 'धाए रामु सरासन साजी' और सोचनेवाले सोचने लगे—

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो थावा॥

श्रीरामके चरित्रका यह पक्ष लोकजीवनका एक बहुत ही महत्वपूर्ण अङ्ग है। जब जैसी घटनाएँ घटित होनेकी होती हैं, तब बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है। हमारी आँखोंपर पर्दा पड़ जाता है और हम हित-अनहितके विभेदको विस्मृत कर बैठते हैं।

लोककी दृष्टिमें मारीच छल-कपटका प्रतीक है। परंतु भगवान् रामने उसको अपने धाममें स्थान दिया और उसकी मृत्युके समय देवताओंने उसके ऊपर पुष्पवर्षा की थी—

बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।

निज पद दीन्ह असुर कहूँ दीनबंधु रघुनाथ॥

भगवान्ने ऐसा क्यों किया? केवल उसके वास्तविक प्रेमके कारण, अन्तःप्रेमके कारण। भगवान् यदि अन्तरकी बात न जानें तो उन्हें अन्तर्यामी कौन कहे? भगवान्ने जिसका भी वध किया, उसको अपना धाम प्रदान किया, उसको मुक्तिका अधिकारी बनाया; क्योंकि उनकी दृष्टि नाम-रूपसे परे सर्वव्याप्त जीवनतक पहुँचती है। उनकी दृष्टि आकारकी सीमाओंसे आबद्ध न रहकर प्राणिमात्रमें अविच्छिन्नरूपसे व्याप्त जीवन-धाराका दर्शन करती है। मारीचकी हृदयस्थ जीवन-धारा निर्मल थी। श्रीरामकी सूक्ष्मदर्शिनी दृष्टि उस निर्मलताको स्पष्ट देख सकी थी। तभी तो—

अन्तर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥

यहाँ यह निवेदन करना परम आवश्यक है कि 'रामचरितमानस' के अन्तर्गत 'सुजाना' शब्दका प्रयोग कई बार हुआ है। गोस्वामीजीने रामके अतिरिक्त इस शब्दका प्रयोग उन विभिन्न व्यक्तियोंके लिये किया है, जो रामके महत्त्वको समझते हैं, उनके स्वरूपको समझते हैं। भरद्वाज, परशुराम, शिव, अवधवासी, इन्द्र, रन्तिदेव, दशरथ, भरत, सुतीक्ष्ण और राम-कथा-गायक काकभुशुण्डि—इनमें प्रमुख हैं। जो लोग काव्य और कविताके वास्तविक स्वरूपको समझते हैं, वे भी 'सुजान' हैं, क्योंकि कविताका कल्याणकारी स्वरूप रामभक्तिसे परिव्याप्त रहता है। यथा—

हृदयसिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥

जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।

पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग॥

शंका होना स्वाभाविक है कि कहाँ भायप-भगतिसे भरे 'भरत' और भक्तिके मूर्तिमान् स्वरूप सुतीक्ष्ण और कहाँ असुर मारीच? राम भेद-भावसे परे होकर सबको मोक्ष प्रदान करते रहें, यह एक बात है, परंतु 'सुजान' कहकर मारीचको भक्तोंकी कोटिमें रख देना कहाँतक न्यायसंगत है?

श्रीरामके प्रति भरतकी अनन्य भक्ति लोकविदित थी। शत्रु भी उनकी राम-भक्तिके प्रति संदेह नहीं कर सकते थे—

भरतु नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेसु सकल जगु जाना॥

भरतकी सुजानताका आभास हमको चित्रकूटकी सभामें प्राप्त होता है। उनकी भक्तिके प्रवाहमें वसिष्ठ मुनि-जैसे तपस्वीकी बुद्धि बहती हुई दिखायी देती है। भरत रामके सम्मुख पाँच प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं। विशेषता यह है कि पाँचोंमें भरतके वन-गमनका विकल्प है। अन्तमें वे यह भी कह देते हैं कि जग-मङ्गलका एक ही उपाय है—आपकी आज्ञाका पालन—

प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।

सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब॥

काकभुशुण्डिने मुनि-दुर्लभ गति प्राप्त की, क्योंकि वे 'सुजान' थे। उनके सुजान होनेका रहस्य यह है—

निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल संदेह॥

अगस्त्य मुनिके शिष्य सुतीक्ष्णके 'सुजान' होनेका रहस्य यह है कि वे मन, वचन, कर्म—सब प्रकारसे रामकी रतिको प्राप्त थे। उनकी गति राममें थी, उनकी मति राममें थी और उनकी रति केवल रामके प्रति थी, यथा—

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥

मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहु आन भरोस न देवक॥

x x x

फलतः उन्होंने जीवनका चरम फल प्राप्त किया—
मुँहमागा वरदान पाया—

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।

मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥

रामके प्रति मारीचका अनुराग भी वस्तुतः इसी कोटिका था। उसके राम-प्रेममें कहीं भी त्रुटि न थी—

अस जियँ जानि दसानन संग। चला राम पद प्रेम अभंगा॥

रामके चरणोंके प्रति अभंग प्रेममें आकण्ठ-निमग्न मारीचसे मृत्युका भय कोसों दूर था। उस क्षण उसको राम-दर्शनका उत्साह था। उस उत्साहमें, उस आनन्दातिरेकमें वह फूला नहीं समाता है। कहीं ऐसा न हो कि उसके राम-प्रेमको देखकर रावण उसे रोक ले। बस—

मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही ॥

मन, वचन और कर्मसे रत होना ही अभंग प्रेमका लक्षण है। यही अनन्यभक्तिका स्वरूप है। सुतीक्ष्णकी राम-भक्ति इसी कोटिकी थी, मारीचकी रामके प्रति रति भी इसी कोटिकी है। देखिये—

निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहों।

श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहों ॥

निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अवसहि बसकरी।

निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी ॥

अनन्य भक्त मारीचके मनोराज्यकी एक झाँकी जो देख लेगा, वही कृतकृत्य हो जायगा—

मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।

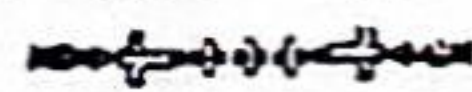
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन ॥

उसके इस प्रेमके वशीभूत होकर भगवान् उसके पीछे दौड़ने लगते हैं। वे ही भगवान् जिनके स्वरूपका निरूपण वेद 'नेति-नेति' कहकर करते हैं, वे ही भगवान् जो विधि-हरि-शम्भुको कठपुतलीकी भाँति नचाते हैं, वे ही भगवान् जिनका गुणगान करते हुए नारद और शारदा थकते नहीं, वे ही भगवान् जिनका दर्शन तपस्वियों और ऋषियोंको दुर्लभ है और वे ही भगवान् जिनकी स्तुति करनेके लिये देवता तरसते रहते हैं। सचमुच मारीचके समान भाग्यवान् अन्य कौन हो सकता है?

मरते समय बड़े-बड़ोंका विवेक नष्ट हो जाता है—

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं ॥

परंतु धन्य है मारीच! अन्त-समय भी उसके मनमें थे। इस कारण रामको मारीच प्यारा था।



नहि प्राणैः प्रियतमं लोके किञ्चन विद्यते। तस्मात् प्राणिदया कार्या यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥

संसारमें प्राणोंके समान प्रियतम दूसरी कोई वस्तु नहीं है। अतः समस्त प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। जैसे अपने ऊपर दया अभीष्ट होती है, वैसे ही दूसरोंपर भी होनी चाहिये। (महाभारत, अनुशासन० १४५)



रामका ध्यान था और मुखपर रामका नाम था—

लछिमन कर प्रथमहि लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा ॥

प्राण तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा ॥

उसने छल-कपट छोड़ दिया, वह अपने अहंकार एवं दम्भको त्यागकर अपने वास्तविक रूपमें भगवान् के सम्मुख प्रकट हो गया। भगवान् के सम्मुख आत्मसमर्पण ही जीवनका चरम साध्य है। संसारोपयोगी छल-कपटको त्यागकर उस ओर उन्मुख होनेका नाम ही भगवान् की ओर प्रवृत्त होना है। इस ओर प्रवृत्त श्रेष्ठजनको स्वयं भगवान् ने यह आश्वासन दिया है—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहि तबहीं ॥

मारीचने अपने छल-कपटका भी त्याग किया और प्रेमसहित भगवान् का स्मरण भी किया। पहले वह भयवश भगवान् का स्मरण करता था—

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा ॥

सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किऐँ भल नाहीं ॥

भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई ॥

अब प्रेमवश उनके सामीप्यकी कामना करता है। अन्त-समय उसने लक्ष्मणको बाहर निकालकर केवल रामके स्वरूपको ही हृदयमें धारण किया—

लछिमन कर प्रथमहि लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा ॥

जिसने यह कर लिया, उसने सब कुछ पा लिया। भगवान् अन्तर्यामी हैं, उन्होंने 'अंतर प्रेम तासु पहिचाना', और उसको मुनि-दुर्लभ गति प्रदान कर दी।

निःश्रेयस-प्राप्तिके उपलक्ष्यमें सबने उसका गुण-गान किया, उसको बधाई दी और उसके प्रति सम्मान प्रकट किया—

बिपुल सुमन सुर वरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।

निज पद दीन्ह असुर कहूँ दीनबंधु रघुनाथ ॥

रामको केवल प्रेम प्यारा है। मारीचको राम प्यारे